UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180641
UNIVERSAL
LIBRARY

भावों की भीख

—रामनिवास जाजू

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81·6/J25B Accession No. G.H. 732

Author जाजू, रामनिवास ।

Title भावों का गौरव ।१९५।

This book should be returned on or before the date last marked below.

भावों की भीख

रचयिता :

रामनिवास जाजू

भूमिका लेखक :

डॉक्टर नगेन्द्र, एम. ए., डी. लिट.

१९५१

मूल्य १।)

प्रकाशक:

पिन्डार्स लिमिटेड,
मुख्य कार्यालय—७, लोअर राउडन स्ट्रीट,
कलकत्ता-२०।

पुस्तक विक्रेता:

कोऑपरेटिव स्टोर्स,
पिलानी (राजस्थान)।

मुद्रक:

शर्मा ब्रादर्स इलैक्ट्रिक प्रेस,
अलवर (राजस्थान)।

दो शब्द

मैंने श्री रामनिवास जाजू के कविता-संग्रह पर एक विहंगम दृष्टि डाली है। रामनिवास जी के काव्य में मुझे एक बात स्पष्ट दिखाई दी, और वह है नैतिक/आदर्श की प्रेरणा, जो एक संस्कारी नवयुवक के लिये स्वाभाविक है। इसी प्रेरणा के कारण उनके उत्साह में राष्ट्रीयता और उनके प्रेम में कर्त्तव्य-भावना प्रमुख है। काव्य और नैतिक आदर्श का पारस्परिक सम्बन्ध एक विवादास्पद विषय हो सकता है, फिर भी इसमें संदेह नहीं किया जा सकता कि सत् के किसी भी रूप के प्रति उत्साह एक स्तुत्य भाव है।

श्री जाजू का यह पहला प्रयत्न है। इससे उनकी शक्ति का बहुत कुछ परिचय मिलता है। मुझे आशा है कि निपुणता और अभ्यास के द्वारा उनका कवि-व्यक्तित्व और भी निखर आयेगा।

मैं उनकी सफलता की कामना करता हूं।

हिन्दी यूनिट, ऑल इंडिया रेडियो,
नई दिल्ली।

नगेन्द्र

अपनी बात

जीवन के कुछ विकल क्षणों में कोई दो वर्ष पूर्व से ही मुझे ऐसा आभास होने लगा कि मेरे युवक हृदय का कोई छिपा हुआ कवि अपने बचपन को एक नई चेतना, नूतन प्रगति व नए मूल्यों से आभूषित कर रहा है। दिन प्रति दिन वह आभास एक जीवित विश्वास का स्वरूप लेता गया। विश्वास केवल विचारों तक ही सीमित न रहकर उस मंजिल तक पहुँचा जिसके फलस्वरूप आज मेरी लेखनी को उसका थोड़ा सा परिचय देने का सामर्थ्य हुआ है।

प्रत्येक मनुष्य के हृदयोद्गार उसके व्यक्तित्व की एक अमिट छाप लिए रहते हैं। मेरे भाव भी यदि सच्चे उद्गार हैं तो उनके इस नियम का उलंघन असम्भव है। व्यक्तित्व और विचारधारा कोई स्थिर वस्तु नहीं है। समय और परिस्थितियों के साथ साथ इनमें परिवर्तन होना भी स्वाभाविक है। ठीक इसी प्राकृतिक नियम का पालन पाठकों को इस संग्रह की कतिपय रचनाओं में मिलता रहेगा। भिन्न भिन्न प्रकार के भोजन की रुचि यदि स्वाद-प्रिय जिह्वा का अधिकार है तो मस्त व मनन योग्य, सामाजिक व साहित्यिक और राष्ट्रीय तथा प्रगतिपूर्ण भावों को पद्य में रच देना भी कवि के मन की एक अधिकृत चेष्टा कही जा सकती है। नवयुग में रहकर नवीन विचार धारा से प्रभावित न होना भी अस्वाभाविक नहीं तो क्या होगा? परन्तु प्रत्येक युवक को संयम के नियंत्रण से काम लेते हुये अपने युग की सच्ची क्रांति का प्रतीक बनना चाहिए। मैंने भी यथा शक्ति आवेशपूर्ण भावों की मादकता से बचते हुये कुछ बिखरे सत्य और कल्पना का पद्य रूप में आज अनावरण किया है।

वृद्धावस्था आयु बीतने पर प्राप्त होती है और बुद्धि का विकास अध्ययन की मात्रा पर अवलंबित है, जिस ओर कि मैंने सही रूप में अभी तक चरण भी नहीं रक्खे हैं। अध्ययन के अभाव में केवल भावना के बल से जो कुछ मैं लिख पाया हूं, सुहृदय काव्य-मर्मज्ञों की सेवा में है और भविष्य में इस अभाव को कुछ अंश तक पूरा करने के लिए जागरूक रहूंगा, ऐसी मेरी अभिलाषा है।

प्रारंभ से ही इस संग्रह के प्रकाशन की प्रेरणा, निरंतर मुझे प्रोफेसर श्री कन्हैयालाल जी सहल, अध्यक्ष, हिन्दी-संस्कृत विभाग द्वारा मिलती रही है जिन्होंने इस कार्य्य के लिए कई सुझाव व अपना अमूल्य समय मुझे दिया। इसके लिए मैं उनका बड़ा आभारी हूं। उत्साह दिलानेवाले अनेक साथियों के साथ साथ उन प्रोफेसर महोदयों को भी मैं धन्यवाद देना चाहूंगा जिन्होंने बड़े चाव के साथ मुझे इस कार्य्य के लिये अपना सहयोग प्रदान किया। अंत में, बिड़ला कॉलिज के प्रिंसिपल श्री महादेवलाल जी सराफ के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करता हूं जिन्होंने इस संग्रह के प्रकाशन में मेरे उत्साह को क्षण भर भी गति हीन नहीं होने दिया।

मेरा यह प्रथम प्रयत्न यदि पाठनीय सिद्ध हुआ और मेरे जैसे कुछ युवकों को प्रतिकूल परिस्थितियों में भी आगे बढ़ने की प्रेरणा दे सका तो मैं स्वयं की इस सफलता को, भविष्य में लक्ष्य पूर्ति का एक अचूक साधन समझूंगा।

पिलानी,
बिड़ला कॉलिज,
१७, राजस्थान
२६ जनवरी १९५१

रामनिवास जाजू

समर्पित

उस मां की मधुर स्मृति में जिसका वात्सल्य
मुझे केवल बाल्यकाल में ही
उपलब्ध हो सका।

विषय-सूची

विषय			पृष्ठ
भावना का भिखारी	...	...	१
गीत	...	...	३
आदेश	...	...	५
कवि तू कब देन	...	...	७
साथी से	...	...	९
कल्पना	...	...	११
जलती होली	...	...	१३
कामना	...	...	१५
बचपन	...	...	१७
खँडहर की वेदना	...	...	१९
अद्वैत	...	...	२१
वर्षा	...	...	२३
जन्म से ही मस्त	...	..	२६
महा पर्व	...	...	२९
मेरी कविता	...	...	३२
परिचय	...	...	३४
सपनों की याद	...	...	३६
मैं	...	...	३८
आभास	...	...	४०
स्वाधीनता दिवस	...	...	४२

विषय			पृष्ठ
क्रांतिमय अरमान	...	...	४४
वियोग में राजघाट से	...	...	४७
गीत	...	...	५०
जिन्दगी के थपेड़े	...	...	५२
ताजमहल	...	...	५४
युवतियों से	...	...	५६
युव-कवि से		...	५६

भावना का मैं भिखारी,
घूमता फिरता अकेला।

राह में कितने मिले थे,
साथ कोई हो न पाया।
दीखते भावुक सभी थे,
पर न मुझको एक भाया।
चाहते कवि बन सकें सब,
शब्द-माला घोट कर ही।
कौन सन्यासी बना पर,
भस्म में बस लोटकर ही?

है दिवाना वेष मेरा, जग मुझे लगता झमेला।
भावना का मैं भिखारी, घूमता फिरता अकेला॥

× × ×

पर्वतों में कन्दराओं—
में चलो तुमको रिझाऊँ।
छोड़कर संसार आओ,
पास मेरे कवि बनाऊँ।
यह लचीले लक्ष्य जग के,
और सब रंगीन रातें।
कवि दबाए पैर नीचे,
घूमते अलमस्त गाते।

नियति का विस्तार पाने, जिन्दगी से खेल खेला।
भावना का मैं भिखारी, घूमता फिरता अकेला॥

× × ×

कह रहे जो व्यंग स्वर में,
मर मिटेगा यह दिवाना।
प्रार्थना उनसे यही है,
छोड़ दें वे यह सिखाना।
आज की ही यह सफलताएँ—
नहीं सारा खजाना।
जो कि अंतिम शव किनारे,
खोलकर मुझको दिखाना।

है अटल विश्वास निशि का, अंत कर देगा उजेला।
भावना का मैं भिखारी, घूमता फिरता अकेला॥

× × ×

गीत

तुम चलीं पर क्यों चलीं, यह रूप आशा का दिखाकर।

बुझ गये स्वर साधना के,
अश्रु निर्मित स्वप्न टूटे।
लुट गये अरमान सारे,
खो गये वरदान रूठे।

फिर उठीं पर क्यों उठीं, इस उग्र ज्वाला को बुझा कर।
तुम चलीं पर क्यों चलीं, यह रूप आशा का दिखाकर॥

× × ×

रूप तेरा था सजाया,
बाग उजड़े को बसाने।
भीख तुझ से माँग ली थी,
दीप जीवन का जलाने।

बस मिटीं पर क्यों मिटीं, इस राह चलते को मिटाकर।
तुम चलीं पर क्यों चलीं, यह रूप आशा का दिखाकर॥

× × ×

खोज डाला है सघन वन,
पर्वतों की कंदरायें।
आज तेरे ही विरह में,
स्तब्ध हैं सारी दिशायें।

जा छिपी पर क्यों छिपी, यह मार्ग निर्जन सा बनाकर ।
तुम चलीं पर क्यों चलीं, यह रूप आशा का दिखाकर ॥

× × ×

क्यों बनी थी संगिनी कर,
मृदुल नयनों से इशारे ।
जा बसीं क्यों आज ठुकरा,
प्रेम के व्यवहार सारे ।

जा बसी पर क्यों बसी, यह आज पतझर सा बनाकर ।
तुम चलीं पर क्यों चलीं, यह रूप आशा का दिखाकर ॥

× × ×

पिलानी, २१-१-४८ ।

आदेश

उठ सुधि के दीप जलाए जा।

जो तेरी गति को क्षीण बता,
दुर्गम पथ को कहते सपना।
तेरे उपवन के वैभव से,
निर्मित करते वैभव अपना।
उद्गार मिटा उठते उर के,
जो निज का महल बनाते हैं।
संकीर्ण हृदय-पट पर उनके,
चल नूतन भाव जमाये जा।

उठ सुधि के दीप जलाये जा।

× × ×

बीहड़ में पथ न मिला जिनको,
उठते ही सीखा है गिरना।
जो बढ़े चले विश्राम छोड़,
पर भूल गये पीछे फिरना।
ले स्वत्व छिपा गुण गौरव का,
निर्माण रूप जो खड़े हुये।
तन मन से धैर्य्य बँधा उनको,
आलोक प्रदीप दिखाए जा।

उठ सुधि के दीप जलाये जा।

कर देश भक्त का आडंबर,
उद्धार हेतु जो खड़े हुये।
छबि दिखला अपने वैभव की,
उत्थान हेतु जो अड़े हुये।
निज उर में पिछला पाप लिए,
जो पल-पल जोश दिलाते हैं।
उनकी तृष्णा को चूर चूर—
कर भंडा फोड़ दिखाए जा।

उठ सुधि के दीप जलाए जा।

× × ×

पिलानी, ७-२-४६ ।

कवि तू कब देन विधाता की,
तेरा है जन्म अभावों में।

मन मस्त दिवाना तेरा बन,
अंतर में आग जलाता है।
मानव-मन का आलोक पुंज,
विद्युत से होड़ लगाता है।
मरु भू की उठती आहों का, करता स्वागत मधु भावों में।
कवि तू कब देन विधाता की, तेरा है जन्म अभावों में ॥

× × ×

फिर जन्म कहाँ तू ले पाता,
उठ जाती निर्धनता जग से।
क्यों तेरा नाम कहानी बन,
ठुकराया जाता पग पग से—
यदि छलक न पड़ता घोर पतन, सज्जन के सुघड़ सुभावों में।
कवि तू कब देन विधाता की, तेरा है जन्म अभावों में ॥

× × ×

नृप महल बने औ कब होते,
सतरंगी रूप किरण लाती।
मधुपान कहाँ संभव पगले,
जीवन की सरिता लहराती।

यदि शंख फूँकता घर घर में, लख कूटनीति सदभावों में।
कवि तू कब देन विधाता की, तेरा है जन्म अभावों में॥

× × ×

यदि पूर्ण प्रतीक्षा हो जाती,
क्या तेरा जीवन रह पाता।
नूतन प्रभात क होते ही,
दीपक सा तू बुझता जाता।

तू दीन बन्धु बन कब रहता, दलितों की दीन कराहों में।
यदि टूटी छप्पर नहीं मिले, भारत के गाँवों गाँवों में।
कवि तू कब देन विधाता की, तेरा है जन्म अभावों में॥

× × ×

पिलानी. १२-२-६९।

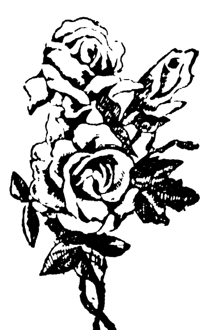

साथी से

इस हृदय का मोद हर तुम, कौनसा पद पा सकोगे ?

उन दिनों का स्वप्न देखो,
प्रेम उपवन था लगाया।
पुष्प भी खिलने न पाये,
पर पवन का झोंक आया।

शांत करने ताप मन का, क्या घटा बन छा सकोगे ?
इस हृदय का मोद हर तुम, कौनसा पद पा सकोगे ?

× × ×

याद रखना फिर मिलेंगे,
हास अधरों का मिटाकर।
पर न आभा ला सकोगे,
आज यह अवहेलना कर।

कर दिवाना वेष भी तुम, क्या मुझे समझा सकोगे ?
इस हृदय का मोद हर तुम, कौनसा पद पा सकोगे ?

× × ×

मैं अभी प्यासा खड़ा हूँ,
प्यास दुनिया की बुझाकर।
प्रेरणा क्या दे सकूँगा,
प्राण भी अपने गँवाकर ?

तोड़कर यह तिमिर क्या तुम, प्रेम-दीप जला सकोगे ?
इस हृदय का मोद हर तुम, कौनसा पद पा सकोगे ?

× × ×

सोच लेना फिर दुबारा,
ताकि दुनिया हँस न पाये।
साधना होती अधूरी,
देख जग आँसू बहाये।
नीड़ मेरा ही जला तुम, क्या मुझे बहला सकोगे ?
इस हृदय का मोद हर तुम, कौनसा पद पा सकोगे ?

× × ×

पिलानी, १.७-२-४९।

कल्पना

आज किसकी कल्पना में, मूक बेसुध बढ़ रहा हूँ ?

चल पड़े जो जीतकर भी,
रुक गये विश्राम करने।
हार कर भी बढ़ चला मैं,
नियति की नव मांग भरने।
प्रात को संध्या समझ कर,
कनक-कर से ले विदाई।
साधना को छोड़ पीछे,
भावना को दी बधाई।

स्तब्ध है संसार सारा, मैं पवन सा उड़ रहा हूँ।
आज किसकी कल्पना में, मूक बेसुध बढ़ रहा हूँ ?

× × ×

मेघ जब नभ में उमड़कर,
इन्द्र-धनु का रूप देंगे।
फिर दबे अरमान मेरे,
ऋतु छटा से खिल पड़ेंगे।
तब गिनूँगा बूँद नभ से—
जो कली से आ मिलेगी।
तब चलूँगा मोर बनकर,
नव लतायें भी हँसेंगी।

जान पाये कौन मुझको, मैं कुसुम सा बन रहा हूँ।
आज किसकी कल्पना में, मूक बेसुध बढ़ रहा हूँ?

× × ×

कौन कहता है विसर्जित,
कल्पना मेरी हुई अब?
ओ! थकित जन आ बताओ,
शून्य का भी छोर है कब।
कह गये जो व्यंग स्वर में,
मर मिटेगा यह दिवाना।
जान पाये वे भला क्या,
बुद्धि का हूँ मैं खजाना?

श्वास मेरा रुक गया पर, मैं नदी सा बह रहा हूँ।
आज किसकी कल्पना में, मूक बेसुध बढ़ रहा हूँ?

× × ×

पिलानी, ७-२-४८।

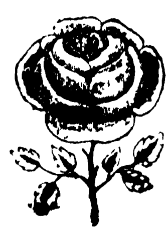

जलती होली

छोड़ दिये हैं गीत अधूरे, कैसे आज मनायें होली ?
चक्र चला है निर्धन के घर,
जलता दीप बुझाने को।
टूट चुकी युग की झोंपड़ियाँ,
ऊँचे महल बसाने को।
बाग उजड़ते देख धरा के, आज कहाँ यह कोकिल बोली।
छोड़ दिये हैं गीत अधूरे, कैसे आज मनायें होली ?

× × ×

नाता कैसे हो पर्वत से,
पत्थर भी जब साथ नहीं है।
किसका हाथ पकड़ लें साथी,
जब निज का भी हाथ नहीं है।
छूट गये बचपन के साथी, बिखर रही है कुंकुम रोली।
छोड़ दिये हैं गीत अधूरे, कैसे आज मनायें होली ?

× × ×

दूर लक्ष्य से कोसों ही हूँ,
किसने मधुमय तान सुनाई।
प्रात अभी कैसे हो पाया,
रात नहीं जब ढलने पाई।
आज फँसी क्यों मृग तृष्णा में, काव्य जगत की सारी टोली ?
छोड़ दिये हैं गीत अधूरे, कैसे आज मनायें होली ?

× × ×

हम हैं सींच रहे जिस तरु को,
मानव-रक्त जड़ों में देकर।
फूल फलों से नाता ही क्या,
ताप न हरता छाया सी कर।
टूट चुके हैं स्वप्न पुरातन, डूब रही क्यों जनता भोली?
छोड़ दिये हैं गीत अधूरे, कैसे आज मनायें होली?

× × ×

माना दूर क्षितिज में रेखा,
आशा का सन्देश सुनाती।
पर पगले यह कैसी आशा,
आने से पहले मिट जाती।
कहाँ बताओ सोये मानव, अभी विश्व ने आँखें खोली।
छोड़ दिये हैं गीत अधूरे, कैसे आज मनायें होली?

× × ×

हड्डी के पुतले पर क्या हम,
छोड़ें अपनी ही पिचकारी?
पहले आज मिटालो उनको,
जो वैभव के हैं अधिकारी।
तब महकेंगे उपवन सारे, खेलेंगे नव-पल्लव होली।
छोड़ दिये हैं गीत अधूरे, कैसे आज मनायें होली?

× × ×

पिलानी, १४-३-४६ ।

कामना

आशा ही अभिलाषा मेरी, बन जाती चिर प्यास बुझाकर।
शब्द कभी जब श्राप बनेंगे,
वचनों से वरदान मिलेगा।
निर्वासन होगा सुरगण का,
मानव को सम्मान मिलेगा।
उठ लेगी मेरी अलमस्ती,
युग युग के अपमान मिटाने।
साथ बढ़ेंगे सर सरिता भी,
जीवन का विस्तार दिखाने।
लक्ष्य करूँगा पूरा बस मरु, भू में ही उद्यान बनाकर।
आशा ही अभिलाषा मेरी, बन जाती चिर प्यास बुझाकर।

× × ×

अंकित होगा त्याग अमिट जब,
तरु तरुवर के पात पात पर।
तेज अटल जब दीप्तिमान हो,
छा लेगा उन्नत ललाट पर।
गान मधुर आह्वान बनेगा,
जग में मैं ऋतुराज बनूँगा।
वेग पवन से भी बढ़ लेगा,
बूँदें वर्षा की गिन लूँगा।

चैन करेगा व्याकुल मन बस, तारों का अनुमान लगाकर।
आशा ही अभिलाषा मेरी, बन जाती चिर प्यास बुझाकर।

× × ×

भ्रमित पथिक मुझको क्या जानें,
राहों का निर्देशक हूँ मैं?
कलुषित जन कहते हैं पगले,
झूठों का उपदेशक हूँ मैं।
पर मुझको वे कैसे जानें,
वारिधि से उस पार बसा हूँ।
मेरा अन्त कहाँ बतलाऊँ,
हिमगिरि से भी मैं उभरा हूँ।
स्वप्न अमर बस सच्चा होगा, नवयुग के नव दीप जलाकर।
आशा ही अभिलाषा मेरी, बन जाती चिर प्यास बुझाकर।

× × ×

पिसांगन (अजमेर), १-५-४९।

बचपन

बचपन एक कहानी सा बन, विस्मृत चित्र दिखा जाता है!
यौवन जब लहरें ले लेकर,
जीवन को मधुमास बनाता।
नव-युग की नव छवि रेखा से,
संशय को विश्वास बनाता।
अपने निज निर्वाचित जग से,
पल पल व्याकुल औ अधीर हो।
क्षण क्षण में भी नई समस्या,
विपदा में बस कर्म हीन हो।
तब प्रहरी सा आकर शिशु-युग, बुझते दीप जला जाता है।
बचपन एक कहानी सा बन, विस्मृत चित्र दिखा जाता है॥

× × ×

निष्ठुर वृद्ध काल जब बनकर,
मोती, आभा रहित अभागा।
मोह मिटा सपना भी सारा,
छा जाता है हीन अमा सा।
किसका हाथ पकड़ कर साथी,
सह लें इस जीवन पतझर को?
पगले यह पतझर अनंत है,
स्थान नहीं है निर्मलता को।

बाल्यकाल आशा किरणों सा, फिर नव-स्पंदन भर जाता है।
बचपन एक कहानी सा बन, विस्मृत चित्र दिखा जाता है ॥

× × ×

यह जीवन का कर्म-कोष है,
जिसमें छेड़ी थीं सब तानें।
यह मानव का शुद्ध हृदय है,
जिसको यौवन कैसे जाने?
है नृप का सा इसका वैभव,
यह शोषित का अभयगान है।
ममता ही इसका है बाना,
यह जीवन का नव-विहान है।

केवल इसका स्मरण मात्र ही, भूले गीत सुना जाता है।
बचपन एक कहानी सा बन, विस्मृत चित्र दिखा जाता है ॥

× × ×

मकरेड़ा (अजमेर), १.०-५-४६।

खँडहर की वेदना

था भूपति का यह धाम कभी, रो खँडहर आज बताता है।

कितने नृप भू पर आये थे,
किसके शासन की याद रही?
युग आता है युग जाता है,
किसकी है मैंने बात कही।
कितने वीरों ने प्राण दिये,
शव कहाँ गड़े होंगे उनके?
सदियों का शंख रुका उनका,
स्वामी जो थे इस त्रिभुवन के।

कैसे साम्राज्य विलीन हुआ, उसकी यह याद दिलाता है?
था भूपति का यह धाम कभी, रो खँडहर आज बताता है।

× × ×

थी दीप-शिखा इसकी उठती,
जब जग में घोर अंधेरा था।
रजनी का राज्य रहा भू पर,
जब यहाँ प्रकाश घनेरा था।
तोपों की ध्वनि इन भवनों में,
गूँजा करती अरि दहलाने।
चौपड़, पासे, मदिरा, प्याले,
साधन थे नृप को बहलाने।

अपने उस उजड़े यौवन पर, यह आँसू छलका जाता है।
था भूपति का यह धाम कभी, रो खंडहर आज बताता है।

× × ×

विप्लव विनाश के दृश्य कई,
देखे इसकी दीवारों ने।
सच, शीश कटे भी लड़ते थे,
जब साथ दिया तलवारों ने।
प्रासाद रहे जो आकर्षण,
हो चूर धरा से कहते हैं।
तुम एक बार तो उठने दो,
हम पीड़ा व्याकुल सहते हैं।

ऐसे अतीत का चित्र लिये, यह गरल घूँट पी जाता है।
था भूपति का यह धाम कभी, रो खँडहर आज बताता है।

× × ×

पिसांगन, ५-६-४९ ।

अद्वैत

आज वचनों में तुम्हारे, पा रहा वरदान हूँ मैं।

रह गया बस मैं अकेला,
मिट गई सारी व्यथायें।
व्यस्त जग क्या जान पाया,
स्नेह-रत विस्मृत कथायें।
पर अमा ने आँख मूँदी,
राग मैंने भी सुनाया।
बन रहा विष भी सुधा है,
बस तुम्हारी देख माया।

श्लोक, शब्दों में तुम्हारे, पर बना अनजान हूँ मैं।
आज वचनों में तुम्हारे, पा रहा वरदान हूँ मैं।

× × ×

चाँद तारे भी चमक कर,
छिप गए आँसू बहाने।
भानु किरणें भी न निकलीं,
मनुज को नीचा दिखाने।
खग-विहग भूले गगन में,
है कहाँ प्रिय नीड़ उनका ?
खो रहा संसार ममता,
मिट रहा सम्मान जन का।

पर तुम्हारा पा इशारा, बन रहा मेहमान हूँ मैं।
आज वचनों में तुम्हारे, पा रहा वरदान हूँ मैं।

× × ×

कौन जग में आज खुश है,
पास भी मुझको बुलाने?
लग चुका प्रतिबन्ध मेरे,
शुष्क यौवन को मिटाने।
मित्र जिनको सोचता था,
साथ देंगे आखिरी क्षण।
बन चुके आवृत्त के सम,
तोड़ डाला है अटल प्रण।
पर तुम्हारे प्रेम बन का, तो बना भगवान हूँ मैं।
आज वचनों में तुम्हारे, पा रहा वरदान हूँ मैं।

× × ×

पिसांगन (अजमेर), १२-६-४८।

वर्षा

तेरी प्रथम बूँद ने वर्षा, कण कण को विश्राम दिया है।

तप्त तवे सी इस धरती के,
मुरझाये लख सर सरितायें।
मौन मधुप मूर्छित बनमाला,
शत प्रतिशत बढ़ती विपदायें।
टूट पड़ा तेरा मधु प्याला,
विह्वल को विश्वास बँधाने।
बिखर गई तेरी मधु किरणें,
अमा रात्रि में चाँद दिखाने।

कूक उठी मदभरी पिकी भी, 'पा जग ने घनश्याम लिया है'।
तेरी प्रथम बूँद ने वर्षा, कण कण को विश्राम दिया है॥

× × ×

दृग प्यासे लख, हरित वर्ण पट,
स्वयं हरे हो जाते हैं।
उद्यानों में खिले कुसुम,
हँस प्रेमी को शरमाते हैं।
कहीं चौकड़ी भर मृग टोली,
हंसों की अवली डग डग पर।

छटा नियति की छिटकाते हैं,
गाँव गली हर डग मग पग पर।

अंबर से बरसे अमृत ने, कैसा यह शुभ काम किया है ?
तेरी प्रथम बूँद ने वर्षा, कण कण को विश्राम दिया है ॥

× × ×

तानसेन से सौम्य स्वरों में,
कहीं कृपक बालायें गाकर।
अपने ढोरों को सन्देशा,
दे देती हैं राग सुनाकर।
मेंड़ बनाते कहीं खेत में,
कृषक प्रकृति की महिमा गायें।
स्वर्ण बूँद गिरती नभ से लख,
मथुरा काशी वहीं मनायें।

क्षण में तज निज नगर गली को, जंगल में ही ग्राम किया है।
तेरी प्रथम बूँद ने वर्षा, कण कण को विश्राम दिया है ॥

× × ×

प्रात-किरण पर्वत के ऊपर,
अतुलित स्वर्ण लुटाती जाती।
इधर क्षितिज की क्षणिक लालिमा,
इन्द्र धनुष को भी शरमाती।

कहीं सुनाई देता कलकल—
स्वर नदियों नालों के मग में।
स्वाभाविक ही स्नेह टपकता,
वन्य खगों की मृदु रग-रग में।

यहीं स्वर्ग है, यहीं मनुज रे, बना इन्द्र ने धाम लिया है।
तेरी प्रथम बूँद ने वर्षा, कण कण को विश्राम दिया है॥

× × ×

अज्ञात खेत की डोल पर, १८-७-४६।

जन्म से ही मस्त हूँ मैं, फिर सहूँ अपमान कैसे ?

आँधियाँ अगणित उठी थीं,
सिन्धु में तूफान आये।
शोक-घन माना उमड़कर,
स्नेह में भी क्षोभ लाये।
हो गए विपरीत सारे,
भाव नद को ही बदलने।
मानता हूँ बढ़ गये सब,
पृष्ठ स्वर्णिम भी पलटने।
पुष्प सौरभ हीन हैं जब, यह हुआ उद्यान कैसे ?
जन्म से ही मस्त हूँ मैं, फिर सहूँ अपमान कैसे ?

× × ×

सैकड़ों मर भी चुके हैं,
सैकड़ों प्रति दिन मरेंगे।
रोक उनको कौन सकता,
कर्म अपना वे भरेंगे।
पर अकेला मैं रहूँगा,
एक नव बस्ती बसाने।
दूत यम के कह रहे पर,
छोड़ दो तुम यह बहाने।

पा लिया अमरत्व मैंने, फिर चलूँ शमशान कैसे ?
जन्म से ही मस्त हूँ मैं, फिर सहूँ अपमान कैसे ?

× × ×

राह के कितने भिखारी,
पहुँचते थे द्वार मेरे।
दीन के अभिशाप हरने,
खुल गये भंडार मेरे।
मूक स्वर में मौन होकर,
भी कहूँ किसको कथा यह।
आज हूँ दर दर भिखारी,
हो गई कैसे व्यथा यह ?

कर्ण मैं भी था किसी दिन, आज ले लूँ दान कैसे ?
जन्म से ही मस्त हूँ मैं, फिर सहूँ अपमान कैसे ?

× × ×

प्रिय मिलन की चाह में ही,
पंगु दुनिया छोड़ दी है।
बस उसी के बंधनों में,
राह अपनी मोड़ दी है।
मैं मधुप बन डोलता हूँ,
वह कली बन हँस रही है।
व्यर्थ मेरा गूँजना वह,
कंटकों में फँस रही है।

मिलन के ही मधु क्षणों में, फिर विरह के गान कैसे ?
जन्म से ही मस्त हूँ मैं, फिर सहूँ अपमान कैसे ?

× × ×

पिलानी, ३-८-४६ ।

महा पर्व

उठो उठो ऐ भारतवासी, आजादी का पर्व मना लो।
सिन्धु-तरङ्गें बोल उठी हैं, इस उपवन का रङ्ग सजालो॥

कितने बलिदानी पुरुषों ने,
इसमें अपना स्वत्व लुटाया।
कितने उत्साही युवकों ने,
हँस हँस अपना रुधिर बहाया।
देखो किसकी शीश भुजाएँ,
इस मन्दिर की ईंट बनी थी।
सोचो किसके अभयगान से,
बन्धन मुक्त हुई जननी थी।

उसी तपस्वी के सपनों को, तुम अपना चिरगान बना लो।
उठो उठो ऐ भारतवासी, आजादी का पर्व मना लो।

× × ×

इन्हीं चरणों में देखो हमने,
इस मन्दिर का दीप जलाया।
इन्हीं करों से देखो हमने,
इस मन्दिर पर कलश चढ़ाया।
बुझे न देखो दीप अमर यह,
हिन्दुस्तानी का हो ले प्रण।

लहराये चिर राष्ट्र पताका,
अर्पित इस पर जब यह जीवन।
बढो शहीदों के मन्दिर से, फिर अपना अनुराग बढ़ा लो।
उठो उठो ऐ भारतवासी, आजादी का पर्व मना लो।।

× × ×

'पन्द्रह अगस्त सन् सैंतालीस,'
फिर याद तुम्हें दिलवाता है।
रुको नहीं तुम बढ़े चलो,
इतिहास बदलता जाता है।
यहीं लाजपत यहीं तिलक है,
गांधी का ही देश रहेगा।
दूर नहीं वह दिन देखो जब,
विश्व तुम्हारी कथा कहेगा।
चिर नूतन यह अनुपम तिथि है, रग रग में नव साहस भर लो।
उठो उठो ऐ भारतवासी, आजादी का पर्व मना लो।

× × ×

टूट जाँय संकीर्ण परिधियाँ,
राष्ट्रवाद को तो अपना लें।
थके पगों की पीड़ा तजकर,
सपनों को साकार बना लें।
करना है निर्माण हमें बस,
युग युग तक यह गान सुनाने।

आजादी का दीप अमर है,
हम जब तक इसके परवाने।

यही दिवाली आज हमारी, निर्धन को बस गले लगा लो।
उठो उठो ऐ भारतवासी, आजादी का पर्व मना लो।
सिन्धु तरङ्गें बोल उठी हैं, इस उपवन का रङ्ग सजा लो॥

× × ×

पिलानी, ३-८-४९।

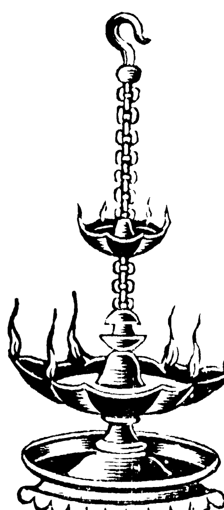

मेरी कविता

मेरा तो बस प्राण यही है, इस पर जाल बिछाते हो क्यों ?
पथिक नहीं उस पथ का जिस पर,
पल पल परियाँ नाच रही हैं।
सृष्टि नहीं ऐसी मेरी जो,
प्रतिक्षण मुझको जाँच रही है।
भक्त नहीं उस मन्दिर का मैं,
शुष्क जहाँ भावों की सरिता।
भाव नहीं उस उर का जिसमें,
भूखी है मेरी भावुकता।
पर दे मुझको सहज भुलावा, मेरा महल डिगाते हो क्यों ?
मेरा तो बस प्राण यही है, इस पर जाल बिछाते हो क्यों ?

× × ×

मानस मेरा बोल उठा है,
कर ले तू अपनी मनमानी।
भावुकता ही होती पगले,
उठते कवि की एक निशानी।
चन्दा को माना छिप जाना,
तारों को माना डिग जाना।
मानव को माना मिट जाना,
अमर किन्तु कविता का बाना।

प्रणय भरा इन शब्दों में है, फिर उपहास उड़ाते हो क्यों ?
मेरा तो बस प्राण यही है, इस पर जाल बिछाते हो क्यों ?

× × ×

चाह नहीं सुख के सपनों की,
जिसमें मानव तड़फा करता।
अभिलाषा न कभी उस उर की,
जो धन वैभव आँका करता।
नाविक मैं ऐसा न कभी,
जिसके हाथों पतवार रहेगी।
पर भावुक ऐसा न कभी,
जिसकी नैया मँझधार रहेगी।

फिर तुम अपनी हार छिपाकर, इसको व्यर्थ बताते हो क्यों ?
मेरा तो बस प्राण यही है, इस पर जाल बिछाते हो क्यों ?

× × ×

अजमेर, ३-१०-४९।

परिचय

छोड़ पुरातन स्वप्न सुनहला, नूतन पथ अपनाता हूँ मैं।

माना एक ओर विकृत जग,
मेरी विकसित अभिलाषा को।
चूर मिला देता मिट्टी में,
मेरी उठती जिज्ञासा को।
आँख-मिचौनी खेल रहा जग,
मेरे मानस के मन्दिर से।
ठोकर भी खा उठतीं जिसमें,
आशाएं निशिदिन क्षण-क्षण से।

पर विपदा, विश्राम समझकर, बीहड़ में बढ़ जाता हूँ मैं।
छोड़ पुरातन स्वप्न सुनहला, नूतन पथ अपनाता हूँ मैं।

× × ×

मैं स्वाभिमान के पृष्ठों पर,
कुछ मान और अपमान लिए।
विश्वास-उदधि में बहता हूँ,
नैराश्य-नदी को पार किये।
जग की राहों से दूर अलग,
मैंने निज राह बना ली है।
पीड़ित से प्रेम लगाकर ही,
मन उज्ज्वल गौरवशाली है।

रेतीले ही टीबों में रह, महलों का सुख पाता हूँ मैं।
छोड़ पुरातन स्वप्न सुनहला, नूतन पथ अपनाता हूँ मैं।

× × ×

सुनता हूँ कुछ समझ रहा मैं,
बाल्यकाल की करुण कथायें।
विदित मुझे है विगत कहानी,
बदल चुकीं पर विमुद प्रथायें।
सिंहासन पर आज खड़ा हूँ,
नभ में ध्रुव सा दीप जलाकर।
जीवन की भी दिशा बदल दी,
आशा का इतिहास बनाकर।

रोक सकेगा कौन मुझे, जो जी में आता गाता हूँ मैं।
छोड़ पुरातन स्वप्न सुनहला, नूतन पथ अपनाता हूँ मैं।

× × ×

पिसांगन (अजमेर), १२-१०-८६।

सपनों की याद

यह कौन परी सा वेष किये, सपनों में जाल बिछाती है?
अधरों से अधर मिलाकर भी, मिलने न हृदय से पाती है।

क्षण क्षण में आशा-किरण खिलें,
नयनों में एक निशानी है।
फिर किसकी प्रतिपल स्मृतियों से,
दिल होता पानी पानी है?

पलकों में प्रेम बसाकर भी, प्रियतम का ध्यान न लाती है।
यह कौन परी सा वेष किये, सपनों में जाल बिछाती है?

× × ×

तितली सी रङ्ग बिरङ्गी बन,
बिंदी माथे पर दिये हुये।
तृष्णा न कभी मिट सकी जहाँ,
चिर प्यास मिलन की लिये हुये।

बाँहों में बाँह फँसाकर भी, आलिंगन से रह जाती है।
यह कौन परी सा वेष किये, सपनों में जाल बिछाती है?

× × ×

अविरल गति से बहती रहती,
अपने पथ को भी छोड़ कहीं।

सौन्दर्य गगन की यह सरिता,
रुकना जिसका है काम नहीं।
ठुमकी देकर क्यों सिहर गई, किस पर सर्वस्व लुटाती है ?
यह कौन परी सा वेष किये, सपनों में जाल बिछाती है ?

× × ×

जो सह न सकी अपनी छवि को,
जो कह न सकी अपने मन को।
किसके पीछे तू पागल सी,
है तोड़ रही अपने प्रण को।
मृदुहास दिखा सरसिज सा भी, मोहित न मुझे कर पाती है।
यह कौन परी सा वेष किये, सपनों में जाल बिछाती है ?

× × ×

पिसांगन, १२-१०-६९।

मैं

भावुकता छाई रग रग में, मैं पहले कवि का प्रथम राग हूँ।
जब मौन अकेला रहता हूँ,
जग बन्धन से छुटकारा पा।
सपनों का नीड़ जला पल में,
बन जाता भाग्य विधाता सा।
कितने दानी भू के स्वामी,
फिर मुझ पर ही मिट जाते हैं!
अपनेपन को खोकर पगले,
मुझ निर्धन में मिल जाते हैं!
पर मेरा रूप नहीं बदला, मैं तो उजड़े का ही सुहाग हूँ।
भावुकता छाई रग रग में, मैं पहले कवि का प्रथम राग हूँ॥

× × ×

कितनों को शांति दिलासा दे,
कितनों से खुद भी आशा ले।
पतवार बना भावों का बस,
नौका उस पार लगा झट से।
बन जाता नूतन युग स्रष्टा,
पिछला इतिहास लिए कर में।
उड़ जाता स्मिति की रेखा सा,
नूतन उद्गार लिए उर में।

भू का है भार सहा किसने, मैं ही कहलाता शेषनाग हूँ ।
भावुकता छाई रग रग में, मैं पहले कवि का प्रथम राग हूँ ॥

× × ×

मैंने ऐसे हिमगिरि देखे,
जिनसे अंबर भी मिलता था ।
मैंने ऐसे युग कवि देखे,
जिनसे इन्द्रासन हिलता था ।
मैंने ऐसे भावुक देखे,
जिनसे सौन्दर्य टपकता था ।
परियाँ भी भू पर आ गिरतीं,
जब उनका नेत्र बदलता था ।

जग भूल गया उन कवियों को, पर मैं उनका जलता चिराग हूँ ।
भावुकता छाई रग रग में, मैं पहले कवि का प्रथम राग हूँ ॥

× × ×

पिसांगन, १४-१०-६८ ।

आभास

नीर भरे नयनों को लेकर, क्यों जीवन अभिशाप बनायें ?

आहों से बस उद्वेलित हो,
क्षण क्षण में विश्वास तोड़ दें।
उठते उठते गिरकर भी क्या,
उठने की ही आश छोड़ दें ?
तूफानों से डरते डरते,
आज अधूरी मंजिल पर ही।
इस जीवन से मोह छोड़कर,
क्यों इसका ही मूल्य घटायें।
क्यों जीवन अभिशाप बनायें ?

× × ×

देख निकट के रङ्ग महल को,
कुटिया क्यों शरमाने लगती ?
लख सातों पकवान धनिक के,
जिह्वा क्यों ललचाने लगती ?
शूल बना क्यों अंबुज सा उर,
सफल सजग होते सुन साथी।
पर दुहरा पिछली भूलों को,
क्यों मन में वैराग्य उठायें ?
क्यों जीवन अभिशाप बनायें ?

× × ×

नहीं दिशा हैं दस मेरे अब,
एक दिशा में जाना होगा।
सार-तत्व ले जीवन का बस,
घोट उसे पी जाना होगा।
सफल पराजय के प्रयास में,
एक बार मिट जाना होगा।
थकित चरण में साहस भरकर,
युग युग गीत विजय के गायें।
क्यों जीवन अभिशाप बनायें?

× × ×

देख लचीले लक्ष्य जगत के,
कैसे मैं निज लक्ष्य मिटा लूँ?
सत्य, बढ़ा सम्मान जगत का,
पर क्यों निज सनमान घटा लूँ?
मैं राजी मेरा मन राजी,
जीवन की जा रही उदासी।
छोड़ निराशा की गलियों को,
आशा नगरी में बस जायें।
क्यों जीवन अभिशाप बनायें?

पिसांगन (अजमेर), १८-६-५०।

स्वाधीनता-दिवस

संग्राम शहीदों ने करके, इस दिन सब कालिख धो डाली।
सिन्दूर चढ़ा मां के मस्तक, नव गौरव की फूटी लाली॥

सदियों का बिखरा यौवन फिर,
निकला अँधियारा मर्दन कर।
ले हाथ खड्ग आजादी का,
फिर देश खड़ा था अर्चन कर।
भवनों की ईंटें उखड़ गईं,
जन-जन में आया नया जोश।
शासन के भड़क उठे भाल,
जनता में लाने नया रोष।
उद्यान हमारा हम इसके, रोका दुश्मन को बन माली।
संग्राम शहीदों ने करके, इस दिन सब कालिख धो डाली॥

× × ×

उनकी जिह्वा में एक नाद,
उनके कंठों में एक राग।
माता के बन्धन ढीले हों,
गोरों की उठ ले लाग बाग।
जेलों में चाहे कब्र बनें,
लें खून खींच कोड़े तन से।

अलमस्त दिवानों की टोली,
पर नहीं हटी अपने प्रण से।
विध्वंस विदेशी शासन कर, त्रिभुवन में बजवा दी ताली।
संग्राम शहीदों ने करके, इस दिन सब कालिख धो डाली।।

× × ×

निर्माण पृष्ठ पर नई पंक्तियाँ,
नये सूत्र से लिखनी हैं।
संसार परीक्षा कर लेगा,
अब शक्ति देश में कितनी है?
संकीर्ण परिधियाँ तोड़ हमें,
शुभ राष्ट्रवाद अपनाना है।
पन्द्रह अगस्त का महा-पर्व,
यदि युग युग तक मनवाना है।
टूटी जंजीरें जुड़ लेंगी, यदि नीति रही घर में काली।
संग्राम शहीदों ने करके, इस दिन सब कालिख धो डाली।
सिंदूर चढ़ा मां के मस्तक, नव गौरव की फूटी लाली।।

× × ×

पिलानी, २८-७-५०।

क्रांतिमय अरमान मेरे,
फूट निकले कल्पना कर।

मर रहे बे मौत कितने,
आज भू पर विकल प्राणी।
रुँध गए जब कंठ कहते,
मूक स्वर में खाक छानी।
जिन्दगी बस थी हमारी,
विश्व को भुगतान करने।
हम बुलाये थे गए क्या,
मृत्यु का शृंगार करने?
इसलिए मैं आज कहता,
छोड़ दो रंगीन रातें।
भेष भगवा धार जोड़ो—
निर्धनों से शेष नाते!
तभी मानव-ज्वार में,
नव क्रांति का तूफान होगा।
दुग्ध - जन - उर - रक्त - शोषक,
का अटल प्रस्थान होगा।

तब चलायें राष्ट्र-नौका, देश हित की योजना कर।
क्रांतिमय अरमान मेरे, फूट निकले कल्पना कर॥

× × ×

छेड़ दें हुंकार ऐसी,
व्योम में भूकंप आयें।
खुल पड़ें सब स्वर अधूरे,
और मंगल गान गायें।
फूंक दें सन्देश ऐसा,
जो मिटे पाकर सफलता।
ठोक दें हम पैर अपना,
गिरि तजे चाहे अचलता।
इसलिए मैं आज कहता,
छोड़ दो प्राचीन राहें।
हैं टिकी संसार की बस,
एक भारत पर निगाहें।
जागती है नींद हम क्यों,
व्यर्थ में ही सो रहे हैं?
जो विपुल बलिदान से,
पाया उसे क्यों खो रहे हैं?
बढ़ चलो उत्थान करने, सत्य की ही अर्चना कर।
क्रांतिमय अरमान मेरे, फूट निकले कल्पना कर।

× × ×

रोक सकता कौन हमको,
हम बढ़ेंगे दस दिशा में।
शूल सरिता और सन्मुख,
घोर आंधी की निशा में।

मार्ग माना है कठिन पर,
हम कठिनता में ही पले हैं।
चूरने चट्टान को सब,
एक ढाँचे में ढले हैं।
इसलिए मैं आज कहता,
प्रण करो सौगन्द खाकर।
मिट सकेगी झोंपड़ी बस,
रजत भवनों को मिटा कर।
तब दबे अरमान सबके,
ऋतु छटा से खिल पड़ेंगे।
विश्व को ही स्वर्ग करने,
देवताओं से लड़ेंगे।
शंख गूँजे फिर विजय का, सफल कवि की कामना कर।
क्रांतिमय अरमान मेरे, फूट निकले कल्पना कर।।

× × ×

पिलानी, ३१-८-५०।

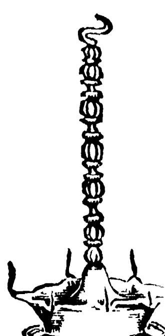

वियोग में राजघाट से

राजघाट के निर्जन तट से, आज अहिंसा अकुलाती है।
गया पुजारी सूना मन्दिर, रोम रोम से ध्वनि आती है॥

जब तक मेरा एक पौरिया,
बना रहा मानव-वन माली।
जन-बल का आंगन ऊंचा था,
हिंसा की थी गोदी खाली।
मानव रक्त नहीं मिलता था,
दानवता के दृश्य दिखाने।
थोथे भाषण नहीं सुनाई,
पड़ते निर्धन नीड़ जलाने।

उस योगी के ही वियोग में, धरती भी सिहरी जाती है।
राजघाट के निर्जन तट से, आज अहिंसा अकुलाती है॥

× × ×

गांधी ने जिन आदर्शों का,
कर डाला संचार रक्त में।
हाय! नहीं उपलब्ध रहे अब,
वे भी उनके अमर भक्त में।
उनकी जय जयकार लगाकर,
आज सैकड़ों पेट पालते।

सेवा की पिछली दीवारों,
से वैभव सम्मान आँकते।
श्राद्ध हुआ लख उन चिन्हों का, भारत माँ थर्रा जाती है।
राजघाट के निर्जन तट से, आज अहिंसा अकुलाती है॥

× × ×

जिसने देह चढ़ा दी अपनी,
मातृ-माथ पर मुकुट सजाने।
तजकर मीठा यौवन जो,
चल पड़ा मृत्यु को अमर बनाने।
होठों की तलवार चलाकर,
जिसने मानव उर को जीता।
आज उसी की वर्ष-गाँठ पर,
हम सोये ज्यों युग युग बीता।
किसके ऋण से लाल किले पर, आज पताका लहराती है?
राजघाट के निर्जन तट से, आज अहिंसा अकुलाती है।

× × ×

यदि हमको जीवित रहना है,
भूल न सकते उस दानी को।
जिसने जीवन दान दिया था,
भारत के प्राणी प्राणों को।
बापू का तन राख हो गया,
हम सब उसकी भस्म रमायें।

उसी तपस्वी के सन्देशों,
पर चलने की कसम उठायें।
तब ही दाग धुलेंगे उर के, जिनसे कलुषित यह छाती है।
राजघाट के निर्जन तट से, आज अहिंसा अकुलाती है।
गया पुजारी सूना मन्दिर, रोम रोम से ध्वनि आती है॥

× × ×

पिलानी, २-१०-५०।

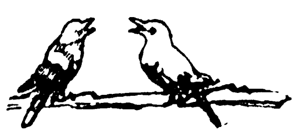

गीत

दिल आश लगाए बैठा है, तुम युग युग मेरे पास रहो।

जब चाँद छिटकता है नभ में,
मैं मनुहारें करने लगता।
मधुशाला में उस पूजा से,
सोये उर का यौवन जगता।
उन घड़ियों की गर्मी मेरे, पल पल का तुम उल्लास रहो।
दिल आश लगाये बैठा है, तुम युग युग मेरे पास रहो॥

× × ×

जीवन में तुमको देखा है,
तुमने जीवन को जन्म दिया।
अभिशाप पुराने थे जितने,
उनको तुमने वरदान किया।
ऐसी आभा की अतुलित निधि, तुम क्षण क्षण मेरी श्वास रहो।
दिल आश लगाए बैठा है, तुम युग युग मेरे पास रहो॥

× × ×

अंबर के तारों में जिसका,
सौन्दर्य टपकता रहता है।
चंपा की नव कलियों पर ही,
जिसका नित यौवन खिलता है।

थपका उर की पीड़ा को मेरे, होठों का मृदु हास रहो।
दिल आश लगाए बैठा है, तुम युग युग मेरे पास रहो।।

× × ×

जो व्यथा न आई पास अभी,
तुम पहले ही अकुलाती हो।
मेरे अंतर के छालों को,
मधु गीतों से सहलाती हो।
जब रेख निराशा की झलके, भरती मुझ में विश्वास रहो।
दिल आश लगाए बैठा है, तुम युग युग मेरे पास रहो।।

× × ×

रजकण, मैं उस पथ का जिस—
डग तेरी पायल बाज रही।
माना मैं राजा त्रिभुवन का,
पर मेरा तो तू ताज रही।
मैं व्यस्त रहूँगा इस जग में, पर तुम मेरे अवकाश रहो।
दिल आश लगाए बैठा है, तुम युग युग मेरे पास रहो।।

× × ×

पिसांगन (अजमेर), २२-१०-५०।

जिन्दगी के थपेड़े

जिन्दगी के यह थपेड़े, क्या मनुज सहता रहेगा ?
भाग्य औ ! भगवान की, अविरल कथा कहता रहेगा ॥

जब मुझे मधु प्यार भाता, मौन हो अलमस्त गाता।
विश्व की रङ्गीनियों का, कल्पना में चित्र लाता ॥
तब जगत की वेदना के, जिन्दगी के मेघ काले।
छोड़ धारा आँसुओं की, तोड़ते सपने निराले ॥

× × ×

आपदा की शृंखला से, धमनियों में रक्त खौले।
रट लगा भगवान की बस, पड़ गए हैं गात पोले ॥
कुछ बिलखते, कुछ तड़फते, जिन्दगी का अंत लाते।
आँसुओं की धार भी ले, वे हृदय भर रो न पाते ॥

× × ×

नित्य निशि दिन सोचते हैं, आ रहा है युग सुनहला।
विश्व में जब देवताओं, की बनेगी रंगशाला ॥
पर सुनहली छाँह में ही, कालिमा के मेघ डोले।
जो सुधा कह दे रहा है, वह उसी में ज़हर घोले ॥

× × ×

इस दुरङ्गी सृष्टि में भी, कौन किसको जान पाये ?
मानते जिसको हितैषी, जाल में ही वह फँसाये ॥

चीख़ मानव मारता, परिवार उसका लुट रहा है।
दीन कहता ओ विधाता! दास तेरा उठ रहा है॥

× × ×

उस समय कवि रो पड़ा, औ! कह उठा ओ मूर्ख मानव!
है कहाँ तेरा विधाता, धैर्य्य क्या धरता रहेगा?
जिन्दगी के यह थपेड़े, क्या मनुज सहता रहेगा?
भाग्य औ! भगवान की, अविरल कथा कहता रहेगा॥

× × ×

एक झोंपडी में, २३-१०-५०।

ताजमहल

किसकी आशा का मिटा रूप, यह कला-सृष्टि में खिला आज ?

प्रेमी जन का उद्गार दिखा,
प्रेमी मन का संसार दिखा।
किसके जीवन का जला दीप,
यह सजग साधना हुई आज ?
यह कला-सृष्टि में खिला आज।

× × ×

अनुपम ऊँची मीनारों ने,
भावुक मन का आह्वान किया।
चिरकाल चिरंतन याद रहे,
बिखरे मोती का साज बाज।
यह कला-सृष्टि में खिला आज।

× × ×

यमुना कहती वह चली गई,
मानव वीणा के तोड़ तार।
पतझड़ में फिर से निर्मलता,
कर दी प्रेमी ने बना ताज।
यह कला-सृष्टि में खिला आज।

× × ×

मधुरे की मधुर मधुरता से,
क्या हृदय शाह का विद्ध हुआ ?
जीवन लड़ियाँ जब टूट गईं,
प्रीतम के मन का बना साज।
यह कला-सृष्टि में खिला आज।

× × ×

चमचम हीरों की दिखा ज्योति,
मुमताज कहानी ले उर में।
मुकलित मन का उल्लास बढ़ा,
उजड़े यौवन में खड़ा ताज।
यह कला-सृष्टि में खिला आज।

× × ×

आगरा, १८-११-५०।

युवतियों से

मैं युवक हूँ पर युवतियों, से रहा दिल दूर मेरा।
बच निकलना इस गली से, ही बना दस्तूर मेरा॥

देख डाले हैं अलौकिक,
और लौकिक रूप सारे।
सुन चुका ध्वनि नूपरों की,
पर न मेरे कर्ण हारे।
याद है वह भी प्रणय जो,
पलक से छनकर निकलता।
पर न मेरा वह हृदय जो,
मोम सा बनकर पिघलता।

नैन बाजी हारते जब, मन बना मगरूर मेरा।
मैं युवक हूँ पर युवतियों, से रहा दिल दूर मेरा॥

× × ×

स्वप्न स्वागत का बनाया,
मधुर अलि पर डाल घेरे।
पुष्प बाँधे चोटियों में,
प्रेम के देने हिलोरे।
जिन्दगी के जीर्ण दीपक—
का समझ मुझको उजाला।

रङ्ग लिये थे होंठ पीने,
स्पर्श की दो घूँट हाला।
पर नशीले रोग से मद, हो न पाया चूर मेरा।
मैं युवक हूँ पर युवतियों, से रहा दिल दूर मेरा॥

× × ×

लौटती रहती कलेजे—
में किसी के हूक निशि दिन।
इन्द्र की पटरानियों को,
भी मिलन की भूख निशि दिन।
प्यार मेरा जीतने वे,
कर रही मंजिल कठिन तै।
ज्यों पहुँचती वे किनारे,
पवन सी बढ़ती गई वह।
पथ सजा सौन्दर्य से पर, दिल न पिघला क्रूर मेरा।
मैं युवक हूँ पर युवतियों, से रहा दिल दूर मेरा॥

× × ×

चाँदनी प्रिय के बिना,
लगती जिन्हें हिमपात सी है।
शरद ऋतु की सूर्य्य किरणें,
भी विरह में आग सी हैं।
हैं निछावर कर रहीं,
शृंगार यौवन के सजीले।

किन्तु घायल हो न पाया,
गीत सुन उनके हठीले।
अब प्रणय उपहार देने, से हुआ मजबूर हूँ मैं।
एक बाला मांग में है, भर चुकी सिंदूर मेरा॥
मैं युवक हूँ पर युवतियों, से रहा दिल दूर मेरा।
बच निकलना इस गली से, ही बना दस्तूर मेरा॥

× × ×

पिकानी, १०-१२-५०।

युग कवि से

नोक लेखनी की खूँ से भर, युग की छाती पर कवि गा दे।
डूबी साँझ विषमता की अब, समता का नव प्रात उगा दे॥

बीज मिटा दे व्यर्थवाद का,
जो कागज के तीर चलाता।
झोंपड़ियों में आग लगाकर,
जो महलों के चित्र दिखाता।

हमें महल की चाह नहीं है,
महलों वालों से यह कहना।
शुभ्र झोंपड़ी तुम भी पकड़ो,
यदि जग में सम्मानित रहना।

बन्दी रह न सकेंगी पलभर,
पग पग टकराती इच्छायें।
आज धनिक के भाग्य-सूर्य पर,
उमड़ घुमड़ कर चली घटायें।

बीत गया है बाल्यकाल,
अब ढली जवानी निर्धनता की।
जिसने देख बुढ़ापा अपना,
करी सजावट आज चिता की।

उसी चिता की भस्म उठाकर, घर घर में समता बटवा दे।
नोक लेखनी की खूँ से भर, युग की छाती पर कवि गा दे॥

× × ×

आज भयंकर चोट लगेगी,
युग की थोथी दीवारों को।
हो लेगा विस्फोट प्रलय का,
लेने जकड़ अधिकारों को।

अब न भरेंगे आहें पीड़ित,
होठों में ही प्यास दबाकर।
रोनेवाले नहीं मिलेंगे,
सिसक सिसक कर श्वास दबाकर।

प्रगतिवाद के छंद नहीं यह,
आज प्रगति की किरणें फूटी।
कस्तूरी के महल टिकेंगे,
कैसे लेकर कड़ियां टूटी?

मोम खड़ी रह सकती कब तक,
जो ढहने को ही पिघली है।
रोक सकेगा कौन धार को,
जो बहने को ही निकली है।

बलिदानों की इस बाती का, अंधकार में दीप जलादे।
नोक लेखनी की खूँ से भर, युग की छाती पर कवि गा दे॥

× × ×

परिवर्तन की इस बेला में,
नई सभ्यता ले अंगड़ाई।
कहती प्रहरी जागे जग में,
जब जब नई सभ्यता आई।

इसीलिए तो धवल हिमालय,
की चोटी से हाथ उठाकर।
प्रहरी का पद ग्रहण करेंगे,
युग निर्माता सा साहस भर।

कृषक हमारा हों बन्दूकें,
जिनसे निकले श्रम की गोली।
तब ही अन्न मिलेगा,
भरने उन लाखों भूखों की झोली।

धुल जाएगा शाप मिला जो,
हमको अपने ही हाथों से।
मूल्य बदलकर ही मानव का,
निकलेंगे झंझावातों से।

नहीं बिकेंगे लाल कौड़ियों, में इसकी तू गाथा गा दे।
सत्य, नहीं यह कल्पित बातें, इसका तू साहित्य रचा दे॥
नोक लेखनी की खूँ से भर, युग की छाती पर कवि गा दे।
डूबी साँझ विषमता की अब, समता का नव प्रात उगा दे॥

× × ×

पिलानी, २६-१२-५०।